मेरा मज़हब

मुफ़क्किरे यगाना जनाब सलामत रिज़वी साहब

हम मुवह्हिद हैं हमारा केश है तरके रुसूम।

मैं भी इसी जुमरे में शामिल हूँ। इस जुमरे में लोग रवादार होते हैं लेकिन रवादारी का यह मतलब हरगिज़ नहीं होता कि

क़शक़ा खींचा, दैर में बैठा

इस दुनिया में बहुत से ऐसे लोग हैं जो इस धोके में पड़े हैं कि वह ख़ुदा, ख़ुदा की मर्जी और ख़ुदा की नाराज़गी के बारे में बहुत अच्छी तरह से वाक़िफ हैं जो सही नहीं है।

यह बात मानना पड़ेगी कि मज़हब जिस सूरत से हम तक तारीख़ी तबदीली के साथ पहुँचा है इसमें बहुत सी ऐसी बातें शामिल हो गयीं है जो मज़हब की अख़लाक़ी और रूहानी हदों और दाएर–ए–अमल से ख़ारिज हैं। मसलन ज़मीन चपटी है या गोल? या ज़मीन गाय की सींग पर धरी है और जब वह सींग बदलती है तो ज़लज़ला आता है। भला इन मोहमल और ख़ुराफात बातों का तअल्लुक़ अख़लाक़ियात और रूहानियात से क्या है? मज़हब दरअस्ल नाम है अख़लाक़ी सच्चाइयों को जिन पर मज़हबी चौधरियों ने एक ऐसा पर्दा डाल दिया है और ऐसी ईजादात कर रखी हैं कि वह उनसे रोटी कमा सकें।

मज़हब पर जब उंगली उठायी जाती है और यह अन्दाज़ा लगाया जाता है कि हमारे अक़ीएद व मुसल्लमात किस हद तक अक़्ल से क़रीब हैं तो मज़हब के ठेकेदार ज़बान बन्द कराने के लिए या इस्तेदलाल को हवा में उड़ाने के लिए सबसे पहली चोट जो मारते हैं वह इलहाद व दहरियत की होती है इसलिए पहले ख़ुदा के ख़यालत पर जहन को साफ कर लिया जाए तो बेहतर है।

वजूदे ख़ुदा के क़ायल होने के साथ मेरा ख़याल ज़रा अलग है। यह कहना कि ख़ुदा सिर्फ मेरा है ''रब्बुल आलमीन'' के फ़रमाने ख़ुदावन्दी के ख़िलाफ बल्कि उसकी तकज़ीब की तरह है। हमें ख़ुदा को समझने के सिलसिले में रवादार होना चाहिए। हम ग़ैरों को अपनी अज़ान उसी वक़्त सुना सकेंगे जब हम ख़ुद नाक़ूस की आवाज़ सुन सकें।

बहैसियत इन्सान हर शख़्स चाहे वह हिन्दू हो कि ईसाई, सिख हो कि यहूदी, सुन्नी हो कि शीआ, ख़ुदा के नज़दीक एक है।

ख़ुदा की चाहता इन्सान की कामयाबी और इस्लाह है। ख़ुदा ने जिस अम्र को अपनी ख़ुशनूदी बताया है वह दरअसल हमारी बेहतरी से मुताल्लिक़ है और जिस अम्र को अपनी नाराज़गी बताया है वह हमारे नुक़सान से मुताल्लिक़ है।

तस्फिया–ए–अख़लाक़ और तज़किया–ए–नफ्स के लिए यक़ीनन इस्लाम से बेहतर कोई मज़हब नहीं है इसलिए हर इन्सान का फितरी फर्ज़ है कि वह इस मज़हब को अख़्तियार करे।

इस्लाम नाम है सलामती का। और सलामती व रवादारी एक ही सिक्के को दो रुख़ हैं। लेकिन दुनिया की लालच और शान की चाहत ने हमें इनसे दूर कर दिया है। इस्लामी

यक्जहती की रूह कमज़ोर हो गयी है। कीना, बुग्ज़, फसाद और नफ्स की गुलामी की लानत किसी नुक़ते पर मुत्तहिद नहीं होने देती। अगर ऐसा न होता तो डाक्टर अम्बेडकर यह कहकर इस्लाम के रास्ते पर आते–आते न हट जाते कि ''इस्लाम में बहुत सी जमातें हैं आख़िर किस जमात का साथ दूँ?'' और गाँधी जी के बेटे जिस वक़्त कुबूले इस्लाम करके दोबारा अपनी पुराने मज़हब पर पलटे तो यह बयान न देते कि ''मैंने मुसलमानों में कोई अख़लाक़ी बुलन्दी ऐसी नहीं पायी जो दूसरे मज़हब वालों में न हो।''

मौलाना अबुलकलाम आज़ाद मरहूम ने मज़हब की ख़ानाबन्दी इस तरह की है :–

''एक भुगोलिक मज़हब है कि ज़मीन के किसी ख़ास टुक्ड़े में एक आम रास्ता बन गया है सब उसी पर चलते हैं आप भी चलते रहिये।''

''एक जनगणना का मज़हब है कि जनगणना के काग़ज़ात में एक ख़ाना मज़हब का भी होता है उसमें मज़हबे इस्लाम दर्ज करा दीजिये।''

''एक रसमी मज़हब है कि रसमों और तक़रीबों का एक साँचा ढल गया है उसे न छेड़िये और उसी में ढलते रहिये।''

''और एक क़िस्म है हक़ीक़ी मज़हब...... जो सिर्फ इल्म और तहक़ीक़ से पैदा होता है हक़ीक़ी मज़हब और हक़ीक़ी इल्म की एक ही मन्ज़िल है।''

मौलाना इसके आगे और लिखते फरमाते हैं :–

''जब तक मौरूसी अक़ाएद के जमे हुए और तक़लीदी ईमान की चश्म बन्दियों की पट्टियाँ हमारी आँखों पर बंधी रहेंगी हम यह सुराग़ नहीं पा सकते। लेकिन जैसे ही यह पट्टियाँ खुलने लगती हैं, साफ दिखायी देता है कि राह न दूर थी और न खोई हुई और फिर हम तक़लीदी अक़ीदे से तहक़ीक़ी अक़ीदे पर गामज़न हो जाते हैं।''

मेरा अपना ख़याल यह है कि मज़हब बिलकुल इन्फेरादी और ज़ाती चीज़ है। हर शख़्स पर लाज़िम है कि वह मज़हब के मुताल्लिक़ अपना नुक़्त–ए–नज़र ख़ुद तै करे। मैं मुसलमान हूँ इसलिए नहीं कि मेरे बाप मुसलमान थे या मेरा ख़ानदान मुसलमान था। क़ुर्आन मजीद ने ''मज़हबे आबा'' को अच्छा नहीं कहा है बल्कि ख़ुद ग़ौर व फ़िक्र करके एक मज़हबी रास्ता तै करने का हुक्म दिया है।

अब रह गया सवाल ''तरके रुसूम'' का। तो मैं बहुत सी रसमें तर्क कर चुका हूँ। तहक़ीक़पसन्द शीआ हूँ इसलिए जिस आलिम या दानिश्वर की बात पसन्द आती है अपना लेता हूँ। नौरोज़ को नहीं मानता, शबे बराअत की हलवा पूरी भी नहीं करता, 22 रजब के कूँडे भी नहीं करता। इन सब चीज़ों के ना मानने को मेरे पास जवाज़ है सिर्फ एक जवाज़ सुन लीजिये।

22 रजब

मशहूर शीआ मोहक़्क़िक़ और मुजतहिद नासिरुल मिल्लत मरहूम ने एक इस्तेफ़सार के जवाब में जो 22 रजब की नज़र के मुताल्लिक़ था वह इस्तेफ़सार जवाब के साथ दर्ज ज़ेल है :–

''सैय्यद हसन अब्बास साहब मूसवी की इदारत और मौलाना सै0 नासिर हुसैन साहब की सरपरस्ती में शाए शुदा अख़लाक़ी, समाजी, इल्मी माहवार रिसाला ''अश्शहीद'' आगरा की जिल्द–1 नम्बर–10 24 ई0 के रजब नम्बर में पेज–2 पर

बाबुल मसाएल में पहला सवाल जो मौलाना सैय्यद नासिर हुसैन साहब से किया गया और जिसका जवाब उन्होंने दिया वह यह है :–

सवाल

क्या इरशाद है इस मसले में कि बाइसवीं रजब हस्बे रिवाज आम व ख़ास तौर पर इमाम जाफर सादिक़ (अ0) की नज़र दिलवायी जाती है और एक क़िस्सा बतौर मोअजज़ा आँहज़रत बवक़्ते नज़र पढ़ा जाता है। आया नज़र इस तरह से और उस क़िस्से पर एतक़ाद बहैसियत मोअजज़ा रखना दुरुस्त है या नहीं। वह क़िस्सा मशहूर है ग़ालिबन जनाब भी वाक़िफ हों। और आया यह क़िस्सा किसी मोअतबर किताब में नज़रे आली से गुज़रा?''

अलजवाब वबिल्लाहित्तौफीक़

''नज़र जनाब इमाम जाफर सादिक़ (अ0) हर मुतबर्रक ज़माने में मुनासिब है लेकिन ख़ास तौर से 22 रजब की यह अक़ीदा रखना और हिकायत को जो अवाम में मशहूर है मुस्तनद क़रार दिया जाना जाएज़ नहीं है और यह हिकायत अहले तशैय्युअ की किसी किताब में मेरी नज़र से नहीं गुज़री और बज़ाहिर अस्ल इसकी मुख़ालिफीने मुतसव्वफीन से है।'' वल्लाहु आलम

यह पढ़ने के बाद मैंने कूँडे बन्द कर दिये। हाँ कोई बुलाए तो खाने ज़रूर चला जाता हूँ।

ऐसा ही कुछ नौरोज़ के बारे में है। यह मजूसियों का त्योहार है, इसको ''नौरोज़े जमशेदी'' कहते हैं। कहा जाता है कि वाक़ेआ–ए–ग़दीर जिस दिन हुआ..............यानी 18 ज़िलहिज्जह मुताबिक़ 21 मार्च था। एलाने ग़दीर के मुताल्लिक़ कहा जाता है कि वह ज़ोहर से कुछ पहले किया गया था। अब अगर इस एतबार से ख़ुशी की नज़र दिलाना है तो वह वक़्ते ज़ोहर से कुछ क़ब्ल होना चाहिए। हर साल सुवर की सवारी, हाथी की सवारी या कुत्ते की सवारी, रंग और बदलते हुए वक़्त पर नज़र दिलाना मजूसियों और नुजूमियों की पैरवी है जो अज़रु–ए–फरमाने अली इब्ने अबी तालिब (अ0) नाजाएज़ और हराम है।

(देखिये ख़ुत्बा नहजुल बलाग़ह)

लेकिन

अज़ादारी करता हूँ, मज्लिस करता हूँ, मातम करता हूँ, कभी–कभी मज्लिसों में शिरकत भी करता हूँ, इसको मैं रसम समझता हूँ न रिवाज, बल्कि यह हमारी पहचान है, शीओयत की पहचान है। मज्लिसों में कभी–कभी शिरकत की वजह यह है कि आज कल के ज़ाकिरों से (इल्ला माशा अल्लाह) कुछ मिलता ही नहीं। पहले के ज़ाकेरीन साल भर किताबें पढ़ते थे और फिर उनका निचोड़ या रस या यूँ कहिये कि प्याले में दरया को बन्द करके पेश करते थे और हमारे इल्म व मालूमात में इज़ाफा करने के साथ–साथ हमारी रूह को ताज़गी और जोश भी बख़्शते थे। आज यह चीज़ खो गयी है और सच बात यह है कि जो लोग मौलाना कल्बे हुसैन साहब मरहूम या मौलाना सैय्यद अली नक़ी साहब मरहूम को सुन चुके हैं उनको आज की तक़रीरों में न मज़ा आता है न लुत्फ। बिलकुल इसी तरह जिस तरह अनीस के मरसियों के बाद हर शाएर का मरसिया फीका लगता है।

तक़लीद

मैं बहरहाल इस ख़याल को सही नहीं मानता कि जो कुछ ज़मान–ए–क़दीम से होता चला आ रहा है उसको क़ाएम ही रहना चाहिए।

महेर लाखों का होता था अब भी हो, नाम व दिखावे के लिए दहेज़ भी वतन के भाईयों की तरह हो, वग़ैरा। अगर यह रसमें हमारी ज़िन्दगी की लिए ज़हरे क़ातिल हैं तो फ़ना होने के क़ाबिल हैं। यह कहना कि उनको कैसे छोड़ें यह तो बुजुर्गों की वक़्त से चली आ रही हैं वैसा ही है जैसा मुश्रिकीन कहते थे कि हमने अपने बाप–दादा को जिस रास्ते पर चलते देखा है उसी रास्ते पर चलते रहेंगे।

तक़लीद न सिर्फ उमूरे मज़हबी में बल्कि हर चीज़, हर काम, हर इल्म और हर फन में ऐसी ज़रूरी चीज़ बन गयी है कि उसने हमारी अक़लों और तहक़ीक़ी सलाहियतों को बेकार कर दिया है।

''ख़बरदार! सलफ के ख़िलाफ को बात ज़बान पर न लाना।''

मगर हक़ीक़त यह है कि –

दरायत व इज्तेहाद............रिवायत व तक़लीद पर मुक़द्दम है।

इल्म कोई ठहरी हुई चीज़ नहीं है। पालने से क़ब्र तक हासिल करने के बाद भी इन्सान प्यासा ही जाता है। इसके हुसूल के लिए सख़्त से सख़्त मेहनत, परेशानी और बेअन्दाज़ा कुर्बानी की ज़रूरत होती है।

मज़हब व अक़ल के सिलसिले में एक बड़े आलिम की हकीमाना बात भी सुन लीजिये वह फरमाते हैं :

''अगर हम ज़िन्दगी की नागवारियों में सहारे के लिए नज़र उठायें तो किस तरफ उठायें? हमें मज़हब की तरफ देखना पड़ता है। यही दीवार है जिससे एक दुखती पीठ टेक लगा सकती है। बिला शुबह मज़हब की वह पुरानी दीवार जिसकी न समझ में अपने वाली कारफरमाइयों का यक़ीन हमारे दिलो दिमाग़ पर छाया रहता था अब हमारे दरमियान बाक़ी नहीं है। अब मज़हब भी हमारे सामने आता है तो अक़लियत और मनतिक़ की एक सादा और बेरंग चादर ओढ़कर आता है, हमारे दिलों से ज़ियादा हमारे दिमागों को मुख़ातब करता है, ताहम अब भी तसकीन और यक़ीन का सहारा मिल सकता है तो उसी से मिल सकता है।''

रस्म व रवाज और तवह्हुमात

बक़ौल सरसैय्यद मरहूम :–

''क़दीम तालीम किताब ख़्वाँ बना रही है। लेकिन तालीम का असल मक़सद यह नहीं है। इसका मक़सद लोगों को क़दामत पसन्दी और औहाम व तारीकी के ग़ारों से निकालना होना चाहिए था और हमें ख़ुशी है कि रिवायात व अक़ाएद का इल्मी नुक़त–ए–नज़र से मुताला अब ज़ियादा ज़ोर पकड़ता जा रहा है।''

और बक़ौन नज्म आफ़न्दी मरहूम –

काबे के बुत तो कुछ न थे, तूने मिटाया उन्हें
सबसे बड़े बुत जो थे रसमो रिवाजे कोहन

और यह रसम व रिवाज कुछ जाहिलाना अक़ाएद की वजह से हैं और कुछ अवाम के मेल–जोल से लेकिन आज के बदले हुए हालात की वजह से बहुत से रस्मो रवाज और तवह्हुमात दम तोड़ चुके हैं। और हमें उम्मीद रखना चाहिए कि इल्म की फरावानी के साथ बाक़ी माँदा बेहूदा रसमें और जाहिलाना तवह्हुमात भी दम तोड़ देंगे। बक़ौल सरदार जाफरी –

जेहल से पैदा हुए हैं इल्म से मर जाएँगे

रसम व रिवाज और तवह्हुमात को राएज

हुए हज़ारों साल का ज़माना दरकार होता है। क़दीम तहज़ीबों का मज़हब और उनके रसमो रिवाज तारीख़ की सूरत में हमारे सामने इसी ग़र्ज़ से पेश किये जाते हैं ताकि हम उनका मुताला कर सकें। इन ही रसमों के राएज करने में रस्म व रिवाज ने जन्म लिया और जब भी इन रस्म व रिवाज में कोई तबदीली आइ तो वह तवह्हुम बन गये।

एशिया की तवह्हुम परस्ती पर जोश ने तहरीर किया है :–

''एशिया............जो रिवायात, अक़्वाल और औहाम का पाया–ए–तख़्त है, यहाँ हज़ारों साल से भूतों, चुड़ैलों, शहीद मुर्दों, जिनों और फरिश्तों की कहानियों की छाओं में बच्चों को सुलाया जा रहा है, यहाँ बड़े–बड़े सूफ़ी और शाएर हिकमत पर जुनून और अक़्ल पर इश्क़ को तरजीह देते आ रहे हैं। यहाँ अलिफ लैला, इन्द्र सभा, चहार दुरवेश और तिलिस्मे होशरुबा के ख़ुराफात को ज़हनों में पाला पोसा जा रहा है, यहाँ बराहीन क़ातेआ की गर्दनों पर कश्फ व करामात की छुरियाँ चलायी जाती हैं।''

क़दीम तहज़ीब के मज़ाहिब का मुताला करने पर यह हर शख़्स यह समझ सकता है कि यह सारे मज़ाहिब डर, ख़ौफ, लालच, नफा और नुक़सान की बुनियादों पर ज़हूर में आए। और यह कि हर मज़हब में मज़हब की लगाम एक मख़सूस तबक़े के हाथों में रही। और यह तबक़ा जलबे मनफअत के लिए अवाम कलअनआम को हर तरह से शीशे में उतारता था। सबज़ बाग़ दिखाता था और ख़ुदाओं को ख़ुश करने के लिए उनसे तरह–तरह की रसमें कराता था। भोले–भाले अवाम को भूत, प्रेत, चुड़ैल और बदरूहों से डराता था और फिर उनके असरात को ज़ाएल करने के लिए तरह–तरह के अमल, नक़्श, टोने, टोटके अन्जाम देता था और इन तमाम बातों में ख़ास बात यह थी कि अवाम को यह हक़ हासिल नहीं था कि वह अज़ख़ुद ख़ुदाओं को ख़ुश करने के लिए यह रसमें अन्जाम दीं। यह सारे काम सिर्फ उसी मख़सूस तबक़े ही के ज़रिए मुमकिन थे।

सितारों की गर्दिश पर चूँकि यक़ीन था इसलिए हर काम के लिए एक शुभ घड़ी मुक़र्रर थी। यह शुभ घड़ी भी इसी तबक़े को क़ब्ज़े में थी। काम को मख़सूस तारीख़ और वक़्त पर शुरु करना और फिर हर साल इसका एआदा त्योहार कहलाते और इन त्योहारों को मुनासबत से ख़ाना, कपड़े और दूसरी चीज़ों को इस्तेमाल रस्म व रिवाज कहलाता था।

सितारा परस्ती इस्लाम ने हराम क़रार दी। इस सिलसिले में हज़रत अली (अ0) का एक ख़ुत्बा क़ाबिले मुलाहेज़ा है।

जब आप ने ख़वारिज से जंग करने की ख़ातिर निकलने का इरादा किया तो एक शख़्स ने कहा ''ऐ अमीरुलमोमिनीन अगर आप इस वक़्त निकले तो इल्मे नुजूम की रु से मुझे अन्देशा है कि आप अपने मक़सद में कामयाब व कामरान नहीं हो सकेंगे।'' जिस पर आप ने फरमाया :–

''क्या तुम्हारा ख़याल है कि तुम उस घड़ी का पता देते हो कि अगर कोई इसमें निकले तो उसके लिए कोई बुराई न होगी और उस लम्हे से ख़बरदार करते हो कि अगर कोई इसमें निकले तो उसे नुक़सान होगा। तो जिसने उसे सही समझा उसने कुर्आन को झुठलाया और मक़सद पाने और मुसीबत के दूर करने में अल्लाह की मदद से बेनियाज़ हो गया। तुम अपनी इन बातों से यह चाहते हो कि जो तुम्हारे कहने पर अमल करे वह अल्लाह को छोड़कर तुम्हारे गुन गाए, इसलिए कि तुमने अपने ख़याल में उस साअत का

पता दिया कि जो उसके फाएदे और नुक़सान का ज़रिया बना।''

(फिर आप लोगों की तरफ मुतवज्जह हुए और फरमाया)

''ऐ लोगों नुजूम के सीखने से परहेज़ करो मगर इतना कि जिससे खुशकी व तरी में रास्ते मालूम कर सको इसलिए कि नुजूम का सीखना कहानत और ग़ैबगोई की तरफ ले जाता है और हुक्म में मिस्ल काहिन के है और काहिन मिस्ल साहिर के और साहिर मिस्ल काफिर के और काफिर का ठिकाना जहन्नम है, बस अल्लाह का नाम लेकर चल खड़े हो।''

(नहजुल बलाग़ह खुतबा नम्बर–77)

मज़कूर–ए–बाला खुतबे की रौशनी में ग़ौर कीजिये तो मानना पड़ेगा कि पेशगोई करने वाले तमाम ''इल्म'' चाहे नुजूम हो या जफर, रमल हो या फ़रासतुलयद सब हराम हैं और उनके आमिल काफिर और जहन्नमी।

अब साअत, दक़ीक़ह, रंग और सवारी देखकर नौरोज़ में खुद उसी की नज़र देना जो इसके ख़िलाफ था किस हद तक दुरुस्त है?

इल्मे नुजूम की दो क़िस्में

मशहूर आलिम, मेरे मोहतरम दोस्त और हमपेशा आली जनाब क़ाज़ी अतहर साहब मुबारकपुरी लिखते हैं :–

''इल्मे नुजूम की दो क़िस्में हैं, एक से सितारों के ख़वास व असरात मालूम करते हैं और लोगों को तवालेअ व बुरूज बताकर साद व नहस और उनकी अच्छाई और बुराई की ख़बर देते हैं यह क़िस्म इस्लामी नुक़्त–ए–नज़र से सरासर हराम है।

इल्मे नुजूम की दूसरी क़िस्म में सितारों की रफ्तार से बहस होती है। यह हिसाब और तजुर्बे के बिना पर है। इसमें ग़ैबदानी का दावा नहीं होता। चाँद कब निकलेगा? सूरज और चाँद को गहन कब होगा यह सब सितारों की चाल के हिसाब पर मौक़ूफ है। इस इल्मे नुजूम की ज़रूरत है। हमारे मदरसों में अब से कुछ दिन पहले इसकी बाक़ाएदा तालीम दी जाती थी।

आज कोई ऐसी बात जिस पर सच होने का यक़ीन न हो जाए सच नहीं मानी जा सकती इसलिए हमें अपने एतक़ादात का जाएज़ा लेना ज़रूरी है, तारीख़हाए सअद व नहस, क़मर दर अक़रब, तहतुश्शुआअ और इसी क़िस्म के दूसरे मोहमलात पर अमल करना एक न ग़ैर मन्तिक़ी बात है।

बाईहमा

मज़हब इन्सान को अख़लाक़ सिखाता है। उन आला इक़दार से पहचान कराता है जो इंसान की दीनी और दुनियावी ज़िन्दगी को ख़ुशगवार और कामयाब बना सकें।

मज़हब से इंसान में रवादारी, बराबरी, भाईचारगी, मुरव्वत और वतन से मुहब्बत के पाकीज़ा जज़बात पैदा होते हैं और सच तो यह है कि मज़हब ही की बदौलत यह बोलने वाला जानवर इंसान कहलाने का मुस्तहक़ है क्योंकि मज़हब इंसान में इंसानियत की खुसूसियात पैदा करता है।

इसके बरअक्स

मज़हब से बेगाना रहकर इंसान औबाश, बदक़िमाश, बदअख़लाक़, बेमुरव्वत, बेग़ैरत, ज़ालिम और जुर्म पेशा बन जाता है और ऐसे अफराद समाज में नासूर की हैसियत रखते हैं।

